

श्रीमद्-वल्लभाचार्य-महाप्रभु-विरचित-षोडश-ग्रन्थान्तर्गत-षष्ठं

नवरत्नम्

पञ्चटीकाभिः समलंकृतं

१. श्रीमत्प्रभुचरणानां प्रकाशः
२. श्रीपुरुषोत्तमानां प्रकाशविवृतिः
३. श्रीविठ्ठलेशात्मजश्रीवल्लभानां प्रकाश दिव्यणी
४. श्रीमुरलीधरभट्टानां विवृतिः
५. श्रीलालूभट्टानां लेखः

श्रीमद्-वल्लभाचार्य-महाप्रभु-प्रवर्तित-शुद्धाद्वैत-सम्प्रदायस्य-सप्त-
पीठान्तर्गत-पञ्चम-पीठाधिष्ठित-गोस्वामिश्री १००८
श्री गोविन्दलाल-महाराजश्रीत्येतैः प्रकाशितम्

वि. सं. २०३६

श्रीवल्लभाब्दाः ५०३

प्रकाशक :

गोस्वामिश्री १००८ श्रीगोविन्दलाल महाराज
पञ्चमपीठ, कामां, भरतपुर, ३२१०२२, भारत.

साधारण संस्करण २००० प्रति
राज संस्करण १००० प्रति
श्रीवल्लभाब्द : ५०२

ग्रन्थ-परिचय लेखक: गोस्वामी श्याम मनोहर

मुद्रक :

स्टूडियो बहार, २३-ए, सेंट्रल चौपाटी बिल्डिंग, चौपाटी, बम्बई. ४०० ००७.



गोस्वामिश्री १००८ श्रीगोविन्दलाल महाराज

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

ग्रन्थ-परिचय

एक किंवदन्तीके अनुसार नवरत्न ग्रन्थकी रचना श्रीमहाप्रभुने वि. सं १५५८ में अडैलमें की थी. ^१ यह ग्रन्थ खेरालुग्रामके गोविन्द दवे सांचोराके लिए लिखा गया था.

प्रारम्भसे ही गोविंद दवेकी मनोवृत्ति वैराग्यप्रधान थी. अल्पवयमें ही ये अपने माता-पिताको छोड़कर तीर्थयात्रार्थ द्वारका पहुंच गये थे और बादमें वहीं रहने लग गये थे. भावप्रकाशके अनुसार ये मर्यादापुष्टिके जीत्र थे और तदनुरूप इनकी द्वारकालीलामें आसक्ति अधिक थी. द्वारकास्थ श्रीरणछोड़-जीके स्वरूपमें भी अतएव इनकी अत्यधिक आसक्ति थी. अपने माता-पिताके देहावसानके बाद ये श्राद्ध करने गया गये थे. लौटते समय मार्गमें मनिकर्णिका घाटपर इनकी भेंट श्रीमहाप्रभुके साथ हुई. दर्शन करते समय इन्हें इच्छा हुई कि श्रीमहाप्रभुके पास रहकर कुछ विद्यार्जन करें. अनुमति मिलनेपर कहींसे व्याकरणकी पोथी ले आये पर श्रीमहाप्रभुने मूल गीताके अध्यापन द्वारा ही संस्कृत भाषा, व्याकरण एवम् सिद्धान्त का भी ज्ञान इन्हें प्रदान कर दिया. इससे प्रभावित होकर ये पुष्टिमार्गमें दीक्षित हुए और आज्ञानुसार घर लौटकर भगवत्सेवामें प्रवृत्त होगये.

८४ वैष्णवकी वार्ताके अनुसार—“गोविन्द दूबे घरमें सेवा करे परन्तु मनमें बहुत विग्रह (व्यग्र) रहे सो सेवामें चित्त लागे नहीं. तब गोविन्द दूबे एक पत्र श्रीआचार्यजीको लिखें—‘महाराज! मेरे मनमें बहुत विग्रह रहत है. भगवत्सेवामें चित्त लागत नहीं सो कहा कहां?’ सो पत्र श्रीआचार्य-जीके पास आयो सो आप बांचिके नवरत्न ग्रन्थ करि लिख पठाये. और लिखें ‘यह नवरत्न ग्रन्थको पाठ किये तेरे मनकी विग्रहता (व्यग्रता) मिटि जायेगी’ सो पाठ करत श्रीआचार्यजीकी कृपाते व्यग्रता-चिन्ता सब मिटि गई. मन भगवत्सेवामें करन लागे.”

१ षोडशग्रन्थनी... तवारीखो लेख. नागरदास बांभणिया. वैष्णववाणी अंक ४ वर्ष १९७९

इस प्रसंगका निगूढ आशय श्रीहरिरायचरणने भावप्रकाश बहुत सुन्दर शब्दोंमें व्यक्त किया है—“गोविन्द दूबेके मनमें विग्रहता भई ताको अभिप्राय यह जो गोविन्द दूबे जीव तो द्वारिकालीला सम्बन्धी और सेवाभावना ब्रजकी करें. सो मन लागे नाही. न राजलीलामें दृढता होई न ब्रजलीलामें. सो अनेक माधनमें मन दोरे. जो तीर्थ करूं के व्रत करूं, कोई जप करूं इत्यादि मन भटके सो श्रीआचर्यजी महाप्रभु नवरत्न ग्रंथ लिखि पठाये—‘तू चिन्ता मति करें. चित्तकी उद्वेगता है यह प्रमूलीला जानि—श्रीठाकुरमें ते मन और ठोर जाये सोउ भगवदिच्छा मानि—चिन्ता मति करियो. जितनी बने तितनी सेवा करियो. तब गोविन्द दूबेको मन स्थिर होगयो. जहां मन लौकिक वैदिक में जाई तो भगवदिच्छा मानें. श्रीरनछोडजीमें मन बहोत जाई सो भगवदिच्छा माने. उहांकी लीलामें मग्न रहे. काहेते ? शास्त्र पुरान अनेक उपाई प्रभुमिलन के कहे हैं. जीवकों मिसमात्र मार्ग दिखाये. जो जहांको अधिकारी है वामें व्राको मन स्वतःसिद्ध लागत है.

ताते जैसे मनुष्य गैल चलिवेवारेको दस गामके मारग वतावें परन्तु जाकों जा गाम जानो होई सोई गाम जात है. तैसे ही कोई भगवदीय द्वारा कोई गुरु द्वारा कोई ईश्वर द्वारा जैसे अधिकारी तैसे संग पाय उही मार्गमें भाव वाकों दृढ होत है. सो गोविन्द दूबेको श्रीरणछोडजीमें दृढ भाव भयो.”

पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थमें मार्गभेदका निरूपण किया ही गया है. सभी जीवोंके मार्ग भिन्न-भिन्न हैं. स्वयम् पुष्टिमार्गमें भी भगवान्के पास पहुंचनेकी अनेक दिशा या सरणी हैं. जिस दिशामें सहजतया हम चल पाते हों उसी ओर हमारे चलनेका प्रयास निरायास होता है. अपने स्वभावके अनुरूप सहजतया जिस मार्गपर हम चल सकते हैं, उसे छोड़कर अन्यान्य फलोंकी कामनाके वश या मिथ्या अनुकरणकी मनोवृत्तिसे, जब हम अपने स्वभावविपरीत मार्गपर चलना चाहते हैं, तो उस आयासमें चिन्ता उद्वेग या व्यग्रता से मनका प्रस्त हो जाना स्वाभाविक बात है.

पुष्टिपथके पथिक स्वयम् अपने स्वरूपका या अपने कर्तव्यके स्वरूपका अथवा अपने भजनीय भगवान्के स्वरूपका चिन्तन करें यह तो स्वभाविक तथा आवश्यक ही है. इस चिन्तनका स्थान परन्तु अस्वाभाविक चिन्ता लेने लग जाये तो वह श्रीमहाप्रभुको नहीं सुहाता है. क्योंकि चिन्ताका मूल हमारी आस्था

भक्ति तथा स्वीकृति की मनोवृत्तिमें न होकर अनास्था उद्विग्नता तथा अस्वीकृति की मनोवृत्तिमें होता है. भगवान्की शरणागति स्वीकारनेके बाद सब कुछ ऐहिक या पारलौकिक भगवान्को समर्पित कर देना चाहिये. भगवान् तो सर्वज्ञ सर्वसमर्थ सर्वहितैषी-सर्वसुहृत् कर्ता-कारयिता अचिन्त्य-लीला-विहारी हैं. इस भावभूमिपर संशय चिन्ता या प्रार्थना के विषेले अंकुर फूट ही नहीं सकते. जो कुछ घटित हो रहा है उसे लीलाबोधके साथ स्वीकारनेमें ही वास्तविक विवेक समाहित है. भगवान्की कृपासे भगवत्सेवा या भगवत्कथा में जितना भी चित्त तन्मय होता चला जाये उसमें अधिकाधिक आनन्द लेते जानेको मनोवृत्ति एक स्वस्थ स्वीकृतिकी मनोवृत्ति है. जबकि अनधिकार चेष्टाके द्वारा जो आदर्श तन्मयता हमें प्राप्त नहीं हुई हो, उसके वारेमें चिन्ता या उद्वेग की मनोवृत्ति अस्वस्थ अस्वीकृतिकी मनोवृत्ति है. प्राप्तसे अधिकका मनोरथ अस्वाभाविक नहीं होता परन्तु अप्राप्तकी चिन्ता या तज्जन्य उद्वेग एक अस्वाभाविक मनोवृत्ति है. इसी तरह लौकिक या वैदिक योगक्षेमके बारे में भी निरन्तर चिन्ता करते रहना एक भक्तिविरोधी मनोभाव है.

अतः भगवत्सेवामें प्रवृत्त होनेवाले पुष्टिजीवोंको श्रीमहाप्रभु इस नवरत्न ग्रन्थके द्वारा सभी तरहकी चिन्ताओंसे मुक्त करना चाहते हैं.

वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अधिकार जैसे गायत्री-मन्त्रके उपदेशग्रहण करनेसे मिलता है, वैसे ही पुष्टिमार्गमें भगवत्सेवाका अधिकार ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षासे प्राप्त होता है. आत्मनिवेदनकी सार्थकता भगवत्सेवाके सम्पन्न होनेपर ही होती है. अपने लौकिक व्यवहार भी अतएव यावत्शक्य भगवान्की सेवामें उपयोग लाये हुए पदार्थोंसे चलाने चाहिये. इसमें भी प्रयोजन पुनः भगवत्सेवाका निर्द्वन्द्व निर्वाह ही होना चाहिये. भगवान्को दानरूप किसी वस्तुके भेंट करनेपर उसे पुनः अपने उपयोगमें लाना वर्जित है पर निवेदितके समर्पणकी प्रक्रियामें किसी वस्तुको पुनः अपने उपयोगमें लाना वर्जित नहीं है. प्रत्युत यही प्रकार अनुसरणीय है. अन्यथा भगवान्को निवेदित अन्न आदिका भी प्रसादके रूपमें पुनर्ग्रहण वर्जित मानना पड़ेगा. जबकि सिद्धान्त-रहस्यमें असमर्पित वस्तुके त्यागका ही विधान किया गया है. अतः आत्मनिवेदीके लिए यह सर्वथा उचित बात है कि प्रभुको समर्पित सभी वस्तुओंका कमसे कम एकवार भगवान्की सेवामें पहले विनियोग करे और तब अपने

उपभोगार्थ उसे ग्रहण करे. इस नियमके पालनसे आत्मशुद्धि होती है.

परन्तु अन्न वस्त्र आदि वस्तुओंके एकबार भगवान्की सेवामें काममें आ जानेपर दुबारा उन्हें जुटानेका प्रयास करना चाहिये कि नहीं? यदि नहीं करते तो आगे सेवाका भी स्वरूप नहीं निभ पायेगा और यदि करते हैं तो वह तो दुनियाकी रीतके अनुसार ही करना पड़ेगा. और उस उपार्जनकी प्रक्रियामें पुनः संसारमें उलझना पड़ेगा तो सेवामें भी विघ्नकी सम्भावना है. इस तरहकी चिन्ता भगवद्भक्तके मनमें उठ सकती है. स्पष्ट है कि ऐसी चिन्ता स्वार्थप्रेरित नहीं होती किन्तु भगवत्सेवार्थ ही होती है. पर श्रीमहा-प्रभु आज्ञा करते हैं कि भक्तको न तो स्वार्थपूर्तिके लिए और न भगवत्सेवार्थ ही चिन्ता करनी चाहिये.

आत्मनिवेदीके लिए यह आवश्यक है कि जीवनमें सुख-दुःख जो भी आयें उन्हें भगवदिच्छा मानकर सहजतया स्वीकार ले. चिन्ता कदापि न करे. लौकिक व्यवहारको निभानेके लिए लौकिक प्रयासमें व्यापृत होनेपर यह सम्भव है कि मर्यादामार्गीय वैराग्य न भी सिद्ध हो. भगवान्ने, किन्तु, पुष्टिमार्गमें हमारा अंगीकार किया है अतः प्रवाहमार्गीय लौकिक गति पुष्टिजीवकी होने नहीं देंगे, यह दृढ आस्था हमें रखनी चाहिये.

भगवत्सेवा निभानेके लिए व्यापार या नौकरी आदि करनेपर सम्भावित वहिर्मुखतासे बचनेका उपाय है, अपने आत्मनिवेदनकी स्मृतिको बनाये रखना कि "मैं कृष्णका हूँ— कृष्णका दास हूँ."

किसी विषम स्थितिमें सेवा न निभ पानी हो तब भी अन्य आत्मनिवेदी भगवद्दीयोंके सत्संगद्वारा इस आत्मनिवेदनकी स्मृतिको बनाये रखना नितान्त आवश्यक है. क्योंकि यह स्मृति मानस-पटलपरसे मिटी और तुरत असुरावेशकी सम्भावना प्रबल हो जाती है.

आत्मनिवेदन करनेवाले सभी पुष्टिजीव चाहे वे उच्चकक्षाके हों या निम्न कक्षाके सभीका सम्बन्ध तो दासके रूपमें भगवान्के साथ जुड़ ही गया है. फिर चिन्ता किस बातकी? भगवान् हमारे स्वामी हैं वे जो भी निजेच्छासे करें वह हमें स्वीकार्य होना चाहिये. और फिर भगवान् तो भक्तवश भी हैं. अतः अपने भक्तोंकी विकाररहित सारी मनोकामना भगवान् बिना किसी प्रार्थनाकी

अपेक्षाके स्वयमेव पूर्ण करेंगे. यह आस्था हमें रखनी चाहिये और चिन्तासे छुटकारा पाना चाहिये.

आत्मनिवेदन तो हम भगवान्को करते हैं पर सेवा तो हमें अपने स्त्री-पुत्र-परिवारकी भी करनी ही पडती है. ऐसी चिन्ता भी आत्मनिवेदीको नहीं करनी चाहिये. क्योंकि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षाके समय हम केवल अपना ही नहीं अपितु सम्पूर्ण परिवारका भी भगवान्को समर्पण कर देते हैं. अतः हमसे सम्बन्धित सभी कुछ प्रभुका अर्थात् ब्रह्मसे सम्बन्धित हो जाता है. अतः उनका भरण-पोषण या संरक्षण भक्तिविरोधी भाव या व्यवहार नहीं गिना जाता. फिर चिन्ता क्यों करनी चाहिये?

परिवारके सदस्य यथा पति-पत्नी माता-पिता या सन्तति आदि, यदि भगवत्सेवामें सहायक न होकर अन्यान्य सांसारिक कार्योंमें व्यस्त रहते हों, तब भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये. क्योंकि हमारा कर्तव्य है उन्हें प्रभुको समर्पित करना. सो वह कर देनेपर सब कुछ भगवदिच्छापर अवलम्बित है कि कब वे उन्हें अपनी सेवामें काममें लायें. सहज सद्भाव तथा प्रेरणा से उन्हें भगवत्सेवामें प्रवृत्त कराया जा सकता हो तो अच्छी बात है. अन्यथा उनकी भगवत्सेवामें रुचि या प्रवृत्ति न दिखलायी पडती हो तो व्यर्थ चिन्ता कलह या क्लेश करना भक्तिविरोधी भाव है.

कभी यह भी सम्भव है कि हमें ऐसे व्यक्तियोंके काम आना पडे जिनके वारेमें ब्रह्मसम्बन्ध लेते समय उन्हें भगवान्को समर्पित करनेका मनोभाव हमारे अन्दर सर्वथा न हो. पर इससे चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है. क्योंकि एक बार सर्वात्मना प्रभुके प्रति समर्पित हो जानेपर, चाहे वह समर्पण ज्ञानपूर्वक न भी हो परन्तु चिन्ताका कोई कारण रह नहीं जाता.

कभी-कभी हमें विश्वास नहीं होता कि हमारे आत्मनिवेदनको प्रभुने सुना कि नहीं. हमने तो सब कुछ समर्पित कर दिया पर भगवान्ने उसे स्वीकारा कि नहीं. यह चिन्ता भी निरर्थक है. क्योंकि श्रीकृष्ण तो पुष्टि-पुरुषोत्तम हैं अतः जैसे ब्रजभक्तोंका अन्याश्रय छोडाकर स्वयमेव अपने भजनमें उन्हें प्रवृत्त करते हैं, वैसे ही जब और जिस क्षण वह अपने भजनमें हमें प्रवृत्त करना चाहेंगे उस क्षण स्वतः ही हमारा तथा हमसे सम्बन्धित सभी वस्तु या व्यक्ति का उनकी सेवामें विनियोग अनायास सम्पन्न हो जायेगा. यदि भग-

वदिच्छा पुष्टिमार्गमें हमारे अंगीकारकी न हो तो हम आत्मनिवेदन भी नहीं कर पायेंगे. प्रभु तो सर्वसमर्थ हैं अतः हमारी सारी अयोग्यताओंको दूर कर बिना किसी साधनकी अपेक्षाके हमें योग्य भी बना सकते हैं. अतः हम निवेदन या समर्पण के योग्य हैं कि नहीं ऐसी चिन्ता भी पुष्टिभक्तको नहीं करनी चाहिये.

जब लौकिक व्यापार आदिमें कोई कठिनाई उपस्थित हो या वैदिक वर्णाश्रम धर्मके पालनमें कोई कठिनाई उपस्थित हो, तब भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये. प्रत्युत यह समझना चाहिये कि भगवान् अधिकाधिक भक्तिमार्गपर अग्रसर होनेका अवसर हमारे सामने उपस्थित कर रहे हैं.

आओ ! सारे पुष्टिजीव आओ ! और ऐसी विषम स्थितिमें भी अपनी पुष्टिभक्तिको निभानेका यत्न करो. लौकिक या वैदिक व्यवहारोंमें स्वास्थ्यका क्या मूल्य यदि पुष्टिभक्तिका स्वास्थ्य न हो ? भगवान् यदि लौकिक दृष्टिसे या वैदिक दृष्टिसे कुछ विषमस्थिति हमारे सम्मुख उपस्थित करते हों तो निश्चिन्त होकर उन्हें सहन कर लेना चाहिये. क्योंकि संभवतः इसी तरह भगवान् हमें पुष्टिमार्गपर अग्रसर करना चाहते हों !

भक्तिकी प्रारम्भिक अवस्थामें गुरुकी आज्ञाके अनुसार ही भगवत्सेवा करनी चाहिये. परन्तु भगवदिच्छावश या भगवदाज्ञावश सेवाके प्रकारमें कुछ भिन्नता भी आ जाये तो चिन्ताकी कोई बात नहीं है. गुरुकी आज्ञाके अनुसार हो अथवा भगवान्की आज्ञाके अनुसार हो जैसे भी कृष्णसेवामें तत्परता बढ़ती चली जाये वही जीवनप्रणाली सुखप्रद होती है.

निश्चिन्तताके इन सारे सिद्धान्तोंको जाननेके बावजूद भी कभी-कभी पारिवारिक कष्ट व्यक्तिको झकझोर देता है. उदाहरणतया पुत्र पति या पत्नी के वियोग होनेपर मनस्ताप हो ही जाता है. पर जो भी कुछ घटित होता है उसे भगवल्लीलाके बोधके साथ सहजतया स्वीकार लेनेकी मनोवृत्ति सम्पादित करनी चाहिये. चिन्ता उद्वेग या मनस्ताप से जितनी भी जल्दी छुटकारा पाया जा सके उसे पानेकी मनोवृत्ति रखनी चाहिये.

भक्तिके नौ सोपान दिखलाये गये हैं— श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य और आत्मनिवेदन. इनमें अपेक्षित प्रकारसे श्रवण-कीर्तन जैसे प्राथमिक सोपानोंपर भी आरोहण करना एक कठिन कार्य है, तो

अन्तिम सोपान आत्मनिवेदन और उसके बाद प्राप्त होनेवाली निश्चिन्तताकी मानसिक अवस्थाका लाभ तो अत्यधिक कठिन लगता है ! परन्तु आवश्यकता इस कठिनताके विचारसे चिन्ताकी नहीं प्रत्युत सर्वात्मना शरणागतिके मनोभावको बनाये रखनेकी है. ऐसी निरर्थक चिन्ताओंमें जितने समय तथा मनोयोग का व्यय हो जाता है, उतने समय तथा उतने मनोयोगसे निरन्तर “श्रीकृष्णः शरणं मम” कहते रहें तो बात बन सकती है.

यह आश्वासन—यह अभिमत केवल गोविन्द दूबके लिए नहीं अपितु सभी पुष्टिजीवोंको श्रीमहाप्रभु दे रहे हैं.

भगवद्-विप्रयोगकी स्नेहात्मिका अनुभूतिमें पुष्टिजीवका कृश होना तो परमपुष्टि है—“तिहारे सेवक ऐसे कृश क्यों ? बरजे हते पर मारगमें आये ताको फल पाय रहे हैं !” यह कृशता तो पुष्टिभक्तके स्थायिभावका एक रोचक सञ्चारिभाव है. अतः रसवर्धक भी है. पर भक्तिके स्थायिभावके विपरीत चिन्ता या उद्वेग रसाभास पैदा करते हैं. रसाभास पैदा करनेवाले चिन्ताके इन्हीं विविध प्रकारोंमें से कुछ प्रकारोंको यहां सूचित किया गया है. श्रीमहाप्रभु पुष्टिभक्तके मानसको इनसे दूषित होनेसे बचाना, चाहते हैं. ताकि कृष्णसेवा तनु-वित्तजासे मानसी सेवाके रूपमें विकसित हो पाये—आत्मनिवेदनका बीजभाव भगवत्प्रेममें अंकुरित हो पाये—भगवदासक्तिमें पल्लवित हो पाये और अन्ततः भगवद्-व्यसनमें वह फलित हो जाये !

प्रस्तुत संस्करण वि. सं. १९८१ में श्रीमूलचन्द्र तुलसीदास तेलीवाला तथा श्रीधीरजलाल ब्रजदास सांकलिया द्वारा सम्पादित-प्रकाशित संस्करणका ऑफसेट प्रॉसेस द्वारा पुनर्मुद्रित रूप है इस पुनःप्रकाशनके अवसरपर हम इन महानुभावोंका कृतज्ञापूर्वक स्मरण करते हैं.

નિવેદન.

૧. સિન્ધદેશાન્તર્ગત ઠઠાનગરનિવાસી ભગવદ્દર્મપરાયણ શેઠ જ્ઞાનન્દ હીરાનન્દ કરાણીના ભાઈ જ્ઞાનન્દ ધનમલ કરાણીની પરલોકવાસી પુત્રી બાઈ પડલીબાઈના દ્રવ્યથી આ નવરત્ન ગ્રન્થનું પ્રાકટ્ય થાય છે. સદરહુ બાઈ પડલીબાઈના લગ્ન ઠઠાના શેઠ તુલસીદાસ ઈસિરદાસ સાથે થયા હતા.
૨. નવરત્નની શ્રીગુણાંધરની વિવૃતિ અને શ્રીપુરુષોત્તમજીનો પ્રકાશ એમ બે ગ્રન્થના આશયનો સંગ્રહ કરી સંપ્રદાયના પ્રસિદ્ધ શાસ્ત્રિવર્ય કલ્યાણજીભાઈ કાનજીએ ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ યોજ્યો છે. ઉક્ત શાસ્ત્રીજીનો અમે તદર્થ ઉપકાર માનીએ છીએ. ગુર્જર અનુવાદને અન્તે ગુજરાતીમાં 'નવરત્નતાત્પર્ય' છાપ્યું છે. આ તાત્પર્ય અમે દશેક વર્ષ ઉપર લખ્યું હતું, અને નડીયાદના વૈષ્ણવ ત્રિભુવનદાસ પીતામ્બરદાસ શાહે પોતાના તરફથી પ્રકટ થતી ષોડશગ્રન્થની માલામાં છાપ્યું હતું. તે તાત્પર્યને શોધી સ્વરૂપ સૂધારા વધારા સાથે અત્ર છાપ્યું છે. આથી સંસ્કૃત જાણનાર અને નહિ જાણનાર વૈષ્ણવ માત્ર આ ગ્રન્થનો આદર કરી શકશે.
૩. નવરત્ન ગ્રન્થ શ્રીમહાપ્રભુજીએ નિજ કૃપાપાત્ર સેવક જોવિન્દ દવેને ઉદ્દેશીને પ્રકટ કર્યો છે. આ ગ્રન્થનું પ્રાકટ્ય શ્રીસુબોધિનીજીના પ્રાકટ્યથી પૂર્વ થયલું લાગે છે. શ્રીસુબોધિનીજીમાં નવરત્નના કોઈ કોઈ શ્લોકનો ઉપન્યાસ જોવામાં આવે છે. આ ગ્રન્થ નવરત્ન શાથી આત્માર્થશ્રીએ કહ્યો એનું સ્પષ્ટીકરણ શ્રીમુરલીધરભટ્ટ પોતાની ટીકામ-સ્પષ્ટ કરે છે. નવરત્ન ઉપર શ્રીગુણાંધરજીએ ટીકા લખી છે, અને શ્રીગુણાંધરની ટીકા ઉપર શ્રીપુરુષોત્તમજી અને કાકા શ્રીવલ્લભજીએ વિવરણ લખ્યાં છે. શ્રીમુરલી-ધરભટ્ટજીએ નવરત્ન ઉપર સ્વતંત્ર ટીકા લખી છે. આ ઉપરાન્ત લાલુભટ્ટજીએ નવ-રત્ન ઉપર બે સ્વતંત્ર લેખ લખ્યા છે. આ બંને સ્વતંત્ર લેખ શ્રીગુણાંધરના નવરત્ન પ્રકાશની એક બે પંક્તિ સ્પષ્ટ કરવાને લખ્યા છે. આ સ્વતંત્ર લેખમાંનો બીજો લેખ લાલુભટ્ટજીના નિર્ણયાણુવમાં મુદ્રિત છે. આ લેખમાં 'અન્યયા દારપરિગ્રહોત્તરક્ષણ..... તત્પરિગ્રહવૈચર્યાપત્તિ:' એ શ્રીગુણાંધરની પંક્તિ એના પૂર્વની પંક્તિ સાથે લાગતી નથી એમ જણાવી શંકાસમાધાન કરવા પ્રયત્ન આદર્યો છે. આ પંક્તિ એમના લખ્યા પ્રમાણે 'ગાવચ્ચુપદેશજસંસ્કારવત્' પછી આવે છે. પરંતુ નવરત્નની શ્રીગુણાંધરના પ્રકાશની બહુ પ્રાચીન અને સુંદર શુદ્ધ દશ બાર પ્રતિઓ અમને પ્રાપ્ત થઈ હતી. એમાંની એક બે પ્રાચીન પ્રતિ ઉપર 'નિવેદનસ.....કાર્ય:' એ પંક્તિ જે અમે આ પુસ્તકમાં ચોથા પૃષ્ઠ ઉપર કાઉસમાં મુદ્રિત કરી છે તે અધિક જોવામાં આવે છે. એ અધિક પંક્તિ કોણે ઉમેરી અથવા ક્યાંથી આવી તે અમને જ્ઞાત થયું નથી. તથાપિ એ પંક્તિ પ્રાચીન પ્રત ઉપર જ પ્રાચીન અક્ષરોમાં લખેલી જોવામાં આવી છે. તેથી અત્રે શ્રીગુણાંધરના પ્રકાશમાં કાઉસમાં છાપી છે. સંભવ છે કે બહુ પ્રાચીન સમયથી શ્રીગુણાંધરના પ્રકાશમાંથી લેખકના પ્રમાદથી એ કાઉસમાં છાપેલી પંક્તિ રહી ગઈ હોય. અને તેથી એ પંક્તિ વિનાની પ્રકાશની અન્ય પ્રતો થઈ. તેથી કોઈ મહાનુભાવી બાલકે પ્રકાશની પ્રતને મૂલ પ્રતની સાથે સરખાવતાં આ પંક્તિની ત્રુટિ માલુમ પડતાં પોતાની પ્રત ઉપર લખી લીધી હોય. અથવા તો

તેના જ કોઈ બાલકે લાલુભટ્ટજીની માફક પોતાને અસંખતિ પ્રતીત થતાં અર્થ થટાવવાને આ પંક્તિ ઉમેરી પણ હોય. ગમે તેમ હોય તો પણ આ કાઉસની પંક્તિથી પ્રકાશનો અર્થ બંધ બેસી રહે છે, અને તેથી લાલુભટ્ટજીનો પ્રયત્ન ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએજ ઉપયોગી લાગે છે.

૪. નવરત્નના ચાલત્રાપ્ય સંસ્કૃત સાહિત્યનો સંગ્રહ કરી શોધી અત્ર પ્રકટ કર્યું છે. શ્રીગુણાંધરજીનો નવરત્નપ્રકાશ પ્રાચીન શુદ્ધ દશેક પ્રતિ ઉપરથી શોધી પ્રકટ કર્યો છે. શ્રીપુરુષોત્તમજીની નવરત્નપ્રકાશવિવૃતિ તથા કાકા શ્રીવલ્લભજીની નવરત્નપ્રકાશ-ટીકા પણ બહુ સારી પ્રાચીન પ્રતિઓના આધારે શોધી છપાવી છે. શ્રીમુરલીધરભટ્ટ-જીની ટીકા માત્ર બે પ્રતિ ઉપરથી છપાવી છે. આ ટીકાની શોધમાં અમે બહુ શ્રમ લીધો છે, તો પણ અમને તન્મુદ્રણમાં સંતોષ થયો નથી. આ શ્રીમુરલીધરભટ્ટજી કોણ અને ક્યારે થયા તે પણ અમને જ્ઞાત થયું નથી. આ સંસ્કૃત સાહિત્ય અમને પં. મદ્લાલાજીના પુસ્તકસંગ્રહમાંથી, પોરબંદરવાલા શ્રીરણુજીડલાલજી, મુરતવાળા શ્રીનગરજી, શાસ્ત્રીજી મુખ્યાજી ગોકુલદાસજી તથા શાસ્ત્રી ચીમનલાલ આદિ તરફથી મળ્યું છે. આ સર્વનો અમારા ઉપર પરમ ઉપકાર થયો છે.
૫. અવલુ કર્યું છે કે શ્રીગોકુલેશે નવરત્ન ઉપર ટીકા લખી છે, તથાપિ તેનું દર્શન કરવાનું સૌભાગ્ય અમને ક્યાંહિ પણ થયું નથી. સંભવ છે કે શ્રીગુણાંધરની વિવૃતિમાં આપે કવચિત્ ઉમેરો કર્યો હોય. આવો કોઈ ઉમેરો એ વિવૃતિમાં પાછળથી થયો છે એમાં તો સંદેહ નથી. એવો એક ઉમેરો જે અમને મળ્યો તે અમે ટિપ્પણમાં સૂક્ષ્મ અક્ષરમાં છાપ્યો છે.
૬. દ્રવ્ય આપનાર શેઠ કરાણી તથા ઉપર જણાવેલા શ્રીગોસ્વામિ બાલકો તથા વિદ્વાનોના સાહાય્યથી આ પરમ પ્રેમ અને પરિશ્રમથી સિદ્ધ થયેલો ગ્રન્થ શ્રીમત્પ્રભુચરણ-કમલમાં સમર્પીએ છીએ.

દોલોત્સવ
૧૯૮૧.
મુંબઈ.

મૂલચન્દ્ર તેલીવાલા.
ધૈર્યલાલ સાંકલીઆ.